इकाई 7 सामाजिक वर्गों पर कोजर और डाहरेंडॉर्फ की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- द्वंद्व के प्रकार्यों के बारे में जान जाएंगे;
- डाहरेंडॉर्फ का पूंजीवादी सिद्धांत क्या है, यह समझ जाएंगे;
- मार्क्स और डाहरेंडॉर्फ ने पूंजीवाद को किस नजरिए से देखा, दोनों के नजरिए में अंतर को जान पाएंगे; और
- कोजर और डाहरेंडॉर्फ के सिद्धांतों की आपस में तुलना कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्रीय चिंतन पर प्रकार्यवाद और द्वंद्वात्मक सिद्धांत जैसे दो विरोधी सैद्धांतिक दृष्टिकोण हावी रहे हैं। अपने कार्यक्षेत्र और अपनी पृष्ठभूमि/वैचारिक मान्यताओं में इन दोनों सिद्धांतों को परस्पर अनन्य माना गया है। प्रकार्यवाद को एक रूढ़िवादी और यथास्थितिवादी सिद्धांत के रूप में लिया जाता है जबकि द्वंद्वात्मक सिद्धांत को एक को एक आमूल परिवर्तनवादी और प्रगतिशील सिद्धांत के रूप में देखा जाता है। इन दोनों में कौन सबसे उपयुक्त है इस पर बहस हमें दोनों में एक सहमति बिंदु की ओर ले जाती है। कोजर और डाहरेंडॉर्फ के कार्य से हमें यही पता चलता है। खासकर जब दोनों सामाजिक स्तरीकरण का विश्लेषण करते हैं। दोनों मार्क्स को ही मुख्य आधार मानकर चलते हैं। मगर वहीं दोनों उनसे अलग हटकर चलते हैं। यहां हम यह बता दें कि कोजर ने अपने अध्ययन का विषय सामूहिक द्वंद्व को बनाया था जिसमें वर्ग द्वंद्व एक असंगति है, वहीं डाहरेंडॉर्फ के अध्ययन का केन्द्र वर्ग और वर्ग द्वंद्व हैं।

7.2 एल. कोजर और राल्फ डाहरेंडॉर्फ

आइए, हम इन दोनों चिंतकों के विचारों की जांच-पड़ताल करें।

7.2.1 कोजर

प्रकार्यवाद और खासकर स्तरीकरण के प्रकार्यवादी सिद्धांतों की लोकप्रियता समाजशास्त्रियों में बढ़ने के साथ-साथ कुछ विद्वानों ने इनकी कमियों की ओर इशारा करना शुरू कर दिया। सबसे कड़ी आलोचना इस मान्यता की हुई कि सामाजिक व्यवस्था की रचना उसके मूल्यों की व्यवस्था के इर्दगिर्द बनी व्यापक सहमति की नींव पर होती है। इस मॉडल का आधार विविध उप-संरचनाओं की समरस क्रिया है।

मगर अनुभव के स्तर पर यह स्पष्ट हो गया था कि समूहों के बीच और उनके अंदर विभिन्न किस्म और आवेग के द्वंद्व निरंतर होते रहते हैं। इस विसंगति को आप क्या मानेंगे? क्या द्वंद्व सिर्फ एक विपथन है? क्या यह विचलन की एक अस्थायी घटना है जिसे सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान सामाजिक नियंत्रण की अंत:निर्मित प्रक्रिया संभाल सकती है? क्या द्वंद्व भी मतैक्य की तरह ही व्यवस्था का एक विशिष्ट लक्षण है? अगर यह बात सही है तो दोनों के बीच क्या संबंध है? कोजर का मुख्य सरोकार यही प्रश्न था।

कोजर को जॉर्ज सिमेल के प्रवर्तनकारी कार्य से प्रेरणा मिली। उन्होंने द्वंद्व को एक सकारात्मक, प्रकार्यात्मक भूमिका के रूप में देखा। कोजर अपना तर्क सिमेल के इस तर्क से शुरू करते हैं कि द्वंद्व या संघर्ष दो कार्यों को अंजाम देता है: पहला, यह व्यवस्था के भीतर समूहों की पहचान को स्थापित करता है। यह सामूहिक चेतना को मजबूत करता है और एक समूह में यह जागरुकता लाता है कि वह उन 'दूसरे' समूहों से अलग है जिनका वह विरोध कर रहा है। उनका यह तर्क पारसंस के तर्क से काफी मिलता है जिसे वह सीमा का पालन कहते हैं। दूसरा है, 'परस्पर घृणा', जो समूहों के बीच में संतुलन बनाए रखती हैं और इस प्रकार यह एक समष्टि के रूप में सामाजिक व्यवस्था की प्रकार्यात्मक स्थिरता को बनाए रखती है। 'परस्पर घृणा' शब्दावली का प्रयोग सिमेल ने किया था।

द्वंद्व के ये दोनों प्रकार्य हालांकि सामूहिक द्वंद्व की सभी स्थितियों में लागू होते हैं लेकिन स्तरित समूहों यानी जातियों और वर्गों के बीच होने वाले द्वंद्व को समझने के लिए ये सबसे उपयुक्त हैं।

7.2.2 द्वंद्व के प्रकार्य

मार्क्स के वर्ग सिद्धांत में सामूहिक पहचान को स्थापित करने और उसे बनाए रखने में द्वंद्व की भूमिका, उसका कार्य अच्छी तरह से स्पष्ट हो जाता है। मार्क्स के अनुसार वर्गों का गठन उनके अन्य वर्ग के साथ होने वाले द्वंद्व के जरिए ही होता है। व्यक्ति अन्य लोगों के साथ साझे वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण लेकर चलते हैं। मगर हो सकता है कि इसके बावजूद वे अपने सामूहिक हितों के बारे से जागरूक नहीं हों। वे अपने आप में एक वर्ग जरूर होते हैं। मगर अपने लिए वे एक वर्ग का स्वरूप तभी धारण कर पाते हैं जब दूसरे वर्ग के विरुद्ध एक समान लड़ाई लड़ें।

आइए, अब हम जाति व्यवस्था और इसमें द्वंद्व के दूसरे कार्य, 'परस्पर घृणा' के बारे में पता करते हैं। कोजर का मानना है कि जातियों के बीच विद्यमान द्वंद्व सिर्फ विभिन्न जातियों की विशिष्टता और पृथकता को ही स्थापित नहीं करता बल्कि भारत के सामाजिक ढांचे की स्थिरता को भी सुनिश्चित करता है।

यह प्रतिद्वंद्वी जातियों के दावों के संतुलन से फलस्वरूप संभव होता है। एक ही जाति के लोग एकता के सूत्र में बंध जाते हैं जो अन्य जातियों के सदस्यों के प्रति उनके समान वैमनष्य और तिरस्कार से उत्पन्न होती है। सामाजिक प्रणाली में पद/स्थान की क्रम परंपरा समाज में उपसमूहों या जातियों के एक-दूसरे के तिरस्कार से बनी रहती है।

7.2.3 द्वंद्व और तिरस्कार

अभी तक हमने स्तरों और जातियों के आपस में द्वंद्व और तिस्कार और उनसे उत्पन्न होने वाले प्रकार्यात्मक परिणामों पर चर्चा की है। इस तरह के दो प्रकार्य होते हैं। पहला, अन्य समूहों के साथ होने वाला संघर्ष या द्वंद्व समूह के भीतर एकीकरण और एकात्मता की भावना लाता है। दूसरा, समूची व्यवस्था को समूहों में एक दूसरे के प्रति विद्यमान घृणा या द्वेष का संतुलन बनाए रखता है।

अभ्यास 1

अध्ययन केन्द्र में अपने सहपाठियों के साथ द्वंद्व के प्रश्न पर विचार-विमर्श करें। क्या द्वंद्व का कोई कार्य हो सकता है? नोटबुक में अपने विचार लिखिए।

चर्चा को आगे बढ़ाने से पहले यहां हम एक महत्वपूर्ण तात आपको बता दें। कभी-कभी बाहरी समूह वैमनष्य और तिरस्कार का लक्ष्य बनने के बजाए अन्य समूह के लिए सकारात्मक संदर्भ समूह का स्वरूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार आगे चलकर सदस्य बनने के उद्देश्य से बाहरी समूह की नकल, उसका अनुकरण किया जाता है। मेर्टन इसे प्रत्याशात्मक समाजीकरण का नाम देते हैं। मगर कोजर का मानना है कि वर्ण व्यवस्था में यह स्थिति नहीं होती क्योंकि इसमें जाति का स्थान जीवन भर के लिए निश्चित होता है और इसमें एक जाति से दूसरी जाति में गमन की नगण्य संभावना होती है। मगर एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार आनुष्ठानिक रूप से निम्न जाति ऊंची जातियों के कर्म-कांड और जीवन-शैली अपनाने का प्रयास करती हैं ताकि जाति क्रम परंपरा में उनकी स्थिति या स्तर में सुधार आ सके। इसे वह संस्कृतीकरण कहते हैं।

विवश्त या खुली वर्ग व्यवस्था में स्तर सीमित होते हैं। इसमें ऊर्ध्वगामी और अधोगामी दोनों तरह का गमन संभव होता है। इस तरह की गतिशीलता एक आदर्श स्थिति है। हालांकि हो सकता है कि वास्तव में इसमें उतना ज्यादा गमन नहीं हो पाता हो। इस तरह की स्थिति में वर्गों की बीच वैमनष्य में उच्च वर्गों के प्रति आकर्षण भी मिला रहता है। उच्च वर्गों के प्रति वैमनष्य की भावना का यह मतलब नहीं कि इन वर्गों के मूल्यों का तिरस्कार किया जा रहा है। असल में यहां 'अंगूर खट्टे हैं' वाली कहावत चरितार्थ होती है जिसका तिरस्कार किया जाता है उसे गुप्त रूप से पसंद भी किया जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) वैमष्य और द्वंद्व के कोजर के अनुसार क्या कार्य है? पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

2) कोजर के अनुसार द्वंद्व के फलस्वरूप समूहों में

   i) एकीकरण और एकात्मकता उत्पन्न होती है,

   ii) खुला वैमनष्य पैदा होता है,

   iii) विखंडन होता है

   iv) क्रांति होती है

   (सही या गलत बताइए)।

7.3 वर्ग द्वंद्व

अभी तक हमने मुख्य रूप से अन्य स्तरों के प्रति वैमनष्य की भावनाओं या भावों के बारे में बात की है। इस प्रकार की नकारात्मक भावनाएं विशेषाधिकारों के असमान वितरण के कारण उत्पन्न होती हैं। यहां पर आकर हमें वैमनष्यपूर्ण भावनाओं या मनोवृत्तियों और द्वंद्व के बीच भेद करना होगा। द्वंद्व दो या अधिक व्यक्तियों या समूहों के बीच परस्पर प्रभावी क्रिया है। नकारात्मक भावनाएं या वैमनष्य जरूरी नहीं कि द्वंद्वपूर्ण परस्पर क्रिया को जन्म दें।

अगर ऐसा है तो हम यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि वे कौन-सी परिस्थितियां हैं जिनमें वैमनष्यपूर्ण भावनाएं समूहों को आपसी संघर्ष की ओर ले जाती हैं। कोजर का मानना है कि समूहों के बीच अधिकारों के असमान वितरण के फलस्वरूप वैमनष्य पैदा होता है क्योंकि इसे न्यायोचित नहीं माना जाता । इसके लिए पहले यह जरूरी है कि अधिकारहीन निर्धन समूह में यह जागरुकता आ जाए कि जो अधिकार और विशेषाधिकार उन्हें मिलनी चाहिए, उनसे उन्हें वंचित किया जा रहा है।

असमानतावादी व्यवस्था की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसे उचित, न्यायसंगत ठहराने वाली विचारधारा भी उसके साथ-साथ निरपवाद रूप से मौजूद रहती है। जिस समूह को अधिकारों से वंचित रखा जा रहा है उसे न्यायसंगत ठहराने वाली इस तरह की समर्थक विचारधारा का तिरस्कार करना होगा। वैध ठहराई जाने वाली व्यवस्था का जब इस तरह सचेतन तिरस्कार किया जाता है, उसे मानने से मना कर दिया जाता है तभी वैमनष्य की भावनाएं कार्रवाई में परिवर्तित की जा सकती हैं। यहां पर आपको कोजर के द्वंद्व परस्पर क्रिया विश्लेषण और कार्ल मार्क्स के विश्लेषण में काफी समानता नजर आ जाती है विशेषकर जब मार्क्स 'अपने आप में एक वर्ग' के 'अपने लिए एक वर्ग' में परिवर्तन की बात करते हैं। कोजर कहते हैं कि सामाजिक ढांचे को जब भी वैध, न्यायोचित नहीं माना तो संघर्ष के जरिए समान उद्देश्य वाले व्यक्ति आ जाते हैं और आत्मजागरुकता वाले ऐसे समूह बना लेते हैं जिनका हित एक जैसा होता है। (इकाई में आगे आप जानेंगे कि डाहरेंडॉर्फ ही ऐसा ही विचार रखते हैं)।

7.4 राल्फ डाहरेंडार्फ

वर्गों और वर्ग द्वंद्वों के अध्ययन में जर्मन समाजशास्त्री राल्फ डाहरेंडॉर्फ का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है। अपने विशारद ग्रंथ *क्लास ऐंड क्लास कनफ्लिक्ट इन इंडस्ट्रियल सोसायटी* में उन्होंने मार्क्स के वर्गीय सिद्धांत की एक तार्किक मीमांसा प्रस्तुत की। डाहरेंडॉफ ने इसमें यह बताया है कि मार्क्स के कौन से विचार तर्कसंगत और समर्थनीय हैं और कौन से नहीं। इसके बाद वह वर्ग, वर्ग संघर्ष और संरचनात्मक परिवर्तन का सिद्धांत देते हैं। आइए, अब उनके योगदान पर संक्षेप में चर्चा करें।

7.4.1 पूंजीवाद और औद्योगिक समाज

अपने अध्ययन के लिए डाहरेंडॉर्फ ने सबसे पहला जो मुद्दा लिया वह है पूंजीवाद और उसके अंदर वर्गों का स्वरूप। उनके अनुसार पूंजीवाद औद्योगिक समाज का सिर्फ एक ही रूप है। मार्क्स के अनुसार पूंजीवाद के दो मुख्य तत्व उत्पादन के साधन के रूप में निजी संपत्ति और निजी अनुबंध (या प्रबंध या पहल) के द्वारा उत्पादन प्रक्रिया पर नियंत्रण हैं। दूसरे शब्दों में यह निजी स्वामित्व और उत्पादन के साधनों पर वास्तविक नियंत्रण है। मार्क्स ने वर्ग और वर्ग का संघर्ष का विश्लेषण पूंजीवाद के इन्हीं गुणों पर किया। अगर हम यह सिद्ध कर दें कि ये गुण अब क्रियाशील नहीं रहे तो आज मार्क्स के सिद्धांत का कोई विशेष महत्व नहीं रह जाता।

7.4.2 पूंजी संग्रह का वियोजन

संयुक्त संग्रह (जॉइंट स्टॉक) कंपनियों के उदय और उनके बड़े पैमाने पर विस्तार के चलते औद्योगिक उद्यमों के स्वामित्व और नियंत्रण के बारे में गंभीर प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। आपको याद होगा स्वामित्व और नियंत्रण ही मार्क्स के चिंतन का मुख्य सरोकार थे। पहले स्वामी और प्रबंधक (मैनेजर) की भूमिकाएं

मूलतः पूंजीपति के स्तर में ही मिली रहती थी। पर आज दोनों भूमिकाएं पूंजीधारक (स्टॉकहोल्डर) में अलग-अलग हो गई हैं। औद्योगिक संगठन के आधिकारिक ढांचे में अब स्वामी की सुस्पष्ट भूमिका नहीं रह गई है और जिन लोगों की इस ढांचे में कोई भूमिका है जरूरी नहीं कि वे पूंजी के स्वामी हों।

प्रबंधकीय अधिकार को वैधता पूंजी के स्वामित्व से नहीं मिलती, बल्कि यह अफसरशाही के संगठन से उपजती है। इस तरह के परिवर्तन का वर्ग संघर्ष पर यह प्रभाव पड़ा है कि इससे संघर्ष या द्वंद्व में हिस्सा लेने वाले समूहों का संगठन बदल गया है। इसके साथ-साथ द्वंद्व को जन्म देने वाले मुद्दे और द्वंद्व या संघर्ष के पैटर्न भी बदल गए हैं।

7.4.3 श्रमशक्ति वियोजन

जिस तरह पूंजी का आज के औद्योगिक समाज में वियोजन हुआ है उसी तरह श्रमशक्ति का भी वियोजन या ह्रास हुआ है। मार्क्स का मानना था कि पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ श्रमिकों की दशा और बिगड़ती जाएगी और उनमें समरूपता आ जाएगी जिसके बाद वे एकजुट होकर संगठित पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध मोर्चा ले सकेंगे। मगर उनके विचार के उलट मजदूरों में पहले से कहीं ज्यादा विभेदन पैदा हो गया है। आज अदक्ष और अर्धदक्ष मजदूरों के बीच भारी भेद उत्पन्न हो गया है, बल्कि अति दक्ष श्रमिकों का अनुपात भी निरंतर बढ़ रहा है। इसका परिणाम यह है कि उनकी आमदनी और कार्यों में भी बड़ा व्यापक अंतर आ गया है।

हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि आधुनिक समाज में एक नए मध्यम वर्ग का उदय हो गया है। यह मुख्यतः सफेदपोश (व्हाइट कॉलर) वेतनभोगी कर्मचारियों का वर्ग है। हालांकि वेतनभोगी कर्मचारी आमदनी और प्रतिष्ठा में मध्य क्रम में आसीन तो था लेकिन द्वंद्व या संघर्ष के सिद्धांत में मध्यम वर्ग के लिए कोई स्थान नहीं है। तो फिर यह वर्ग द्वंद्व की कसौटी में कहां फिट होता है? यह एक बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि मध्यम वर्ग अपने नाम और स्वरूप में बड़ी विविधता लिये है; डॉक्टर, इंजीनियर से लेकर क्लर्क, चपरासी तरह-तरह के लोग इस वर्ग में आते हैं। अब सवाल यह उठता है कि द्वंद्व या संघर्ष की स्थिति में इनमें से कौन 'संपन्न' होगा और किसे निर्धन कहा जाएगा? डाहरेंडॉर्फ नौकरशाही की क्रम परंपरा में आसीन लोगों को शासक वर्ग तो सफेद पोश कर्मचारियों की श्रमिक वर्ग में रखते हैं।

7.4.4 सामाजिक गतिशीलता और समतावादी सिद्धांत

पूंजी और श्रमशक्ति के वियोजन और एक नए विघटित मध्यम वर्ग के अलावा सामाजिक गतिशीलता भी वर्गों के समांगीकरण या एकरूपता के विपरीत काम करती है। मार्क्स का मानना था कि समाज में एक व्यक्ति को जो दर्जा प्राप्त होता है उसे उसकी पारिवारिक उत्पत्ति और समाज में उसके माता-पिता का स्थान तय करते हैं। मगर पूंजीवादोत्तर समाजों में ऐसी बात नहीं है। पीढ़ियों में और पीढ़ियों के बीच भारी सामाजिक-गतिशीलता हुई है। वर्ग की रचना और उसके स्वरूप के लिए इसका यह मतलब रहा है कि वर्गों के स्वरूप में भी अस्थिरता आ गई है। इसलिए वर्ग संघर्ष की तीव्रता भी घट गई है यह स्थिति तो एक वास्तविकता हो ही सकती है मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इससे वर्ग संघर्ष की संभावना पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाती।

अभ्यास 2

आधुनिक समाज मार्क्स के विचारों से किस प्रकार भिन्न है? लोगों से इस पर चर्चा कीजिए और नोटबुक में अपने विचार और अनुभव लिखिए।

समूचे समाज को अपनी जद में लेने वाले जिस वर्ग संघर्ष की कल्पना मार्क्स ने की थी, उसके विपरीत एक और महत्वपूर्ण कारक काम करता है। यह है राजनीति के क्षेत्र में समतावादी सिद्धांत। संगठन बनाने की स्वतंत्रता के चलते मजदूर संघ और राजनीतिक दल द्वंद्व को हिंसक वर्ग संघर्ष से अलग दिशा में मोड़ने में सफल रहे हैं। कम से कम संगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिक वर्ग अपने लिए लाभ जुटाने में सफल रहा है।

मार्क्स ने वर्गों के समांगीकरण और श्रमिक वर्ग की कंगाली के फलस्वरूप जिस तीव्र और हिंसक वर्ग संघर्ष की कल्पना की थी, इतिहास की कसौटी में वह खरी नहीं उतरी है। डाहरेंडॉर्फ ने मार्क्स की जो मीमांसा की है उसके अनुसार तीन बातें विशेष महत्व रखती हैं। पहला, पूंजी और श्रम दोनों का वियोजन हुआ है और एक नया मध्यम वर्ग उभरा है। दूसरा, सामाजिक गतिशीलता ने एक वर्ग से दूसरे वर्ग में व्यक्तियों का गमन संभव बना दिया है। तीसरा, राजनीतिक क्षेत्र में मिल रही समानता के चलते संस्थागत ढांचे के भीतर ही वर्ग संघर्ष करना संभव हो गया है और इसके लिए वर्ग युद्ध का रास्ता अपनाना जरूरी नहीं रह गया है। निजी संपत्ति और नियंत्रण अलग-अलग हो गए हैं और इसके साथ सर्वहारा वर्ग का स्वरूप भी बिखर गया है, इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि पूरा समाज दो बड़े विरोधी गुटों में विभाजित हो रहा है। वर्ग और वर्ग संघर्ष गरीब पूंजीवादी समाजों में विद्यमान रहेंगे मगर उनका स्वरूप मार्क्स की कल्पना से बिल्कुल भिन्न रहेगा।
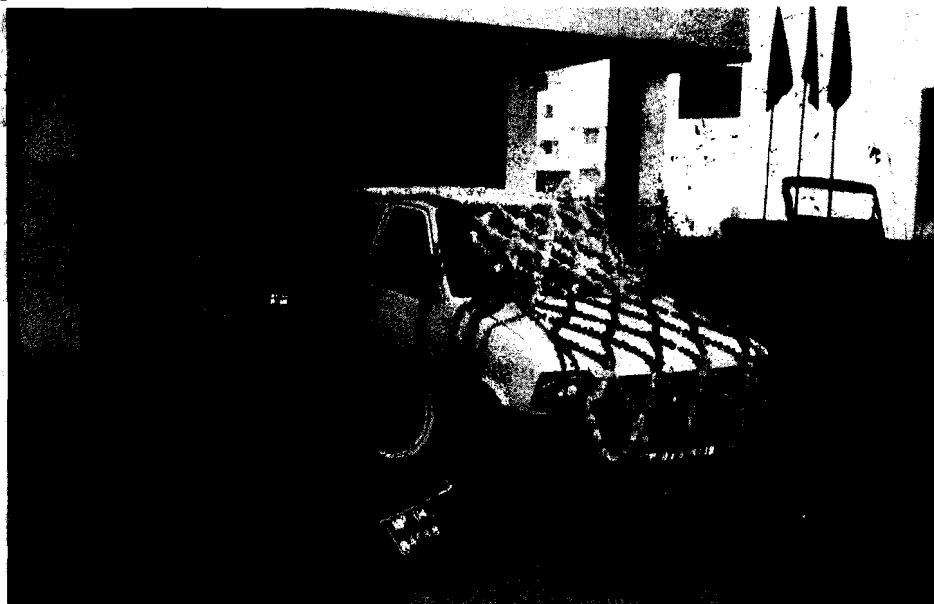
एक प्रकार से विवाह में भी सामाजिक गतिशीलता व्याप्त है
साभार : टी. कपूर

7.5 वर्ग संघर्ष का डाहरेंडॉर्फ सिद्धांत

डाहरेंडॉर्फ ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि बदली हुई परिस्थितियों में आधुनिक औद्योगिक समाज में मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धांत उपयोगी नहीं रह गया है। इसके बाद वह इस विषय में अपना नया सिद्धांत रखते हैं। समाजशास्त्र के सैद्धांतिक निधि में मूलत: दो भिन्न रुझान देखने को मिलते हैं। पहला है समाज का समेकन सिद्धांत और दूसरा है समाज का बाध्यता का सिद्धांत।

7.5.1 समेकन और बाध्यता सिद्धांत की बुनियादी मान्यताएं

समाज का समेकन सिद्धांत मूलत: चार मान्यताओं पर आधारित है, जो इस प्रकार हैं:

i) हर समाज घटकों का अपेक्षतया एक अटल, स्थिर ढांचा है।

ii) हर समाज घटकों का एक समेकित ढांचा है।

iii) समाज के प्रत्येक घटक का अपना विशेष कार्य है, अपनी विशिष्ट भूमिका है। वह एक पद्धति या प्रणाली के रूप में उसे बनाए रखने में सहायक होता है।

iv) प्रत्येक कार्यशील सामाजिक ढांचा उसके सदस्यों के बीच मूल्य मतैक्य या सहमति पर टिका होता है।

बाध्यता का सिद्धांत भी इन चार मान्यताओं को लेकर चलता है:

i) प्रत्येक समाज प्रत्येक बिंदु पर प्रक्रियाओं के परिवर्तन से गुजरता है; सामाजिक बदलाव हर समाज में होता है।

ii) प्रत्येक समाज प्रत्येक बिंदु पर असंतोष और द्वंद्व दर्शाता है। सामाजिक द्वंद्व हर समाज में होता है।

iii) समाज का प्रत्येक घटक उसके विखंडन और परिवर्तन में हाथ बंटाता है।

iv) प्रत्येक समाज के मूल में उसके कुछ सदस्यों की बाध्यता होती है, जिसे दूसरे लोग उन पर थोपते हैं।

डाहरेंडार्फ दोनों मॉडलों को प्रतिद्वंद्वी के बजाए एक दूसरे का पूरक मानते हैं। द्वंद्व समूहों की रचना की व्याख्या के लिए दूसरा मॉडल उपयुक्त है। इन मान्यताओं के आधार पर डाहरेंडॉर्फ प्रस्थापनाओं के रूप में कुछ विचार रखते हैं। इन प्रस्थापनाओं का विश्लेषण और उनकी अनुभवजन्य पुष्टि जरूरी है।

7.5.2 डाहरेंडॉर्फ का सिद्धांत

आइए, अब उनके ग्रंथ *थ्योरी ऑफ सोशल क्लासेज ऐंड क्लास कनफ्लिक्ट* में प्रस्तुत विचारों के बारे में जानते हैं। यहां हमारा ध्येय सामूहिक द्वंद्व के रूप में होने वाले संरचनात्मक बदलावों का अध्ययन और उनकी व्याख्या करना है। चूंकि यहां हमारी रुचि का विषय मुख्यत: द्वंद्व और उसके परिणाम हैं, इसलिए बाध्यता मॉडल के अनुसार हम इसे समूचे सामाजिक ढांचे में विद्यमान यानी सर्वव्यापी मानकर चलेंगे। सामाजिक ढांचे के सभी घटक यानी भूमिकाएं, संस्थाएं, आदर्श का अस्थिरता और परिवर्तन से कोई न कोई सरोकार है। (प्रत्युत्तर में कोई यह सवाल कर सकता है कि यह एकता और संबद्धता आखिर कैसे? तो इसका उत्तर होगा: 'बाध्यता और अंकुश'।

बोध प्रश्न 2

1) डाहरेंडॉर्फ का सिद्धांत मार्क्स से किस तरह भिन्न है? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) सही या गलत बताइए

   i) मार्क्स ने पूंजी के वियोजन की बात कही थी।

   ii) डाहरेंडॉर्फ का मानना है कि वर्ग संघर्ष क्रांति की ओर ले जाता है।

   iii) मार्क्स कहते हैं कि पूंजी आदेशक समन्वित साहचर्य को जन्म देती है।

   iv) वर्ग संघर्ष सामाजिक संरचना के लिए परिणाम लेकर आता है।

प्रत्येक सिद्धांत, चाहे वह कितना ही आरंभिक क्यों न हो, वह कुछ निश्चित धारणाएं लेकर चलता है। इन धारणाओं को अच्छी तरह से स्पष्ट होना चाहिए ताकि इनके अंतर्संबंध को दर्शाने वाले कथनों को स्पष्ट तरीके से समझा जा सके। डाहरेंडॉर्फ ऐसे विरले चिंतकों में हैं जिन्होंने बड़ी सूझ-बूझ के साथ वही किया जो पद्धतिकार तो खूब सुझाते हैं पर कभी-कभार अमल में ही लाते हैं।

चूंकि यह सिद्धांत मुख्यत: द्वंद्व के बारे में है, इसलिए शक्ति (सत्ताधिकार), सत्ता जैसी धारणाओं का भी इसमें अपना स्थान है। मैक्स वेबर के अनुसार चलें तो प्रभुसत्ता (वैध सत्ताधिकार) का अर्थ इसकी संभावना है कि एक निश्चित विषय-वस्तु वाले आदेश का व्यक्तियों के एक समूह विशेष द्वारा पालन किया जाएगा। यहां इस बात पर जोर देना जरूरी है कि प्रभुसत्ता एक निश्चित संगठन या समूह तक सीमित होती है। 'क' फैक्टरी के मैनेजर की प्रभुसत्ता 'ख' फैक्टरी के मजदूरों पर नहीं हो सकती। उसकी प्रभुसत्ता उसकी फैक्टरी की हद तक सीमित होती है।

बॉक्स 7.01

जिन लोगों के पास प्रभुसत्ता होती है उनका अन्य लोगों पर *प्रभुत्व* रहता है। यह प्रभुसत्ता का स्वामित्व ही है। प्रभुसत्ता से वंचित रहने का मतलब पराधीनता है। प्रभुसत्ता, प्रभुत्व और पराधीनता के संयोजन से ही *आदेशक समन्वित साहचर्य* की व्याख्या स्पष्ट होती है। ऐसा कोई भी संगठन जिसके सजीव सदस्य प्रभुसत्ता संबंधों के पराधीन हों, उसे हम *आदेशक समन्वित साहचर्य* कहेंगे। यह प्रभुत्व और पराधीनता के रूप में हमें संबंधों की विसंगतियों के बारे में बताता है।

चेतना, वर्ग चेतना और झूठी वर्ग चेतना ('अपने-आप में वर्ग' और 'वर्ग अपने लिए') के अस्तित्वात्मक आधार पर मार्क्स के विचारों से आगे डाहरेंडॉर्फ अव्यक्त और प्रकट हितों के बीच अंतर बताते हैं।

अव्यक्त हित ऐसे हित हैं जिनके बारे में प्रभुत्व और पराधीनता का अवलंबन करने वाले दोनों पद स्थानों पर आसीन लोग अनजान होते हैं। इसकें विपरीत प्रकट हित के बारे में व्यक्ति सचेत रहता है ये हित व्यक्ति को दूसरों के विरोध में खड़ा करते हैं। समूहों को इन दोनों हितों के अनुसार बांटा जा सकता है। व्यक्तियों के जिस समूह के साझे अव्यक्त हित होते हैं उसे हम कल्प समूह कहते हैं। दूसरी ओर जिस समूह के साझे प्रकट हित होते हैं उन्हें हित समूह कहा जाता है।
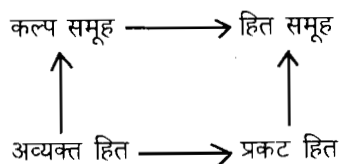
(यहां गौर करने की बात यह है कि विरोधी की संरचनात्मक गतिशीलता के कारण अव्यक्त हित अगर प्रकट रूप धारण कर लें तो कल्प समूह भी हित समूह बन जाते हैं।)

7.5.3 सामाजिक वर्ग और डाहरेंडॉर्फ का नजरिया

इस प्रकार सामाजिक वर्ग *संगठित* या *असंगठित* समूह हैं जिनके साझे अव्यक्त या प्रकट हित होते हैं जो *आदेशक समन्वित साहचर्य* के प्रभुसत्ता के ढांचे से उत्पन्न होते हैं।

इस बारे में गौर करने वाली कुछ महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं:

i) सामाजिक वर्ग सभी या समग्रता में समाज के अधिकांश सदस्यों को समेट कर नहीं चलता। यह सिर्फ आदेशक संमन्वित साहचर्य के लिए प्रासंगिक होता है।

ii) प्रभुत्व और पराधीनता के आदेशक समन्वित साहचर्य वाले प्रभुसत्ता ढांचे में सिर्फ दो वर्ग ही उभरते हैं।

iii) सामाजिक वर्ग हमेशा द्वंद्व समूह होते हैं।

समूह द्वंद्व संगठित समूहों के बीच एक वैमनष्यपूर्ण संबंध होता है क्योंकि सामाजिक संरचना के स्वरूप, उसके पैटर्न पर आधारित होता है। (यह न तो औचक होता है और न ही मनौवैज्ञानिक कारकों पर आधारित होता है)। एक निश्चित आदेशक समन्वित साहचर्य में प्रभुसत्ता के ढांचे से उत्पन्न होने वाला वर्ग संघर्ष स्थानिक और सर्वव्यापी होता है। वर्ग संघर्ष की उपस्थिति और उसके फलस्वरूप समूह द्वारा की *जाने वाली कार्रवाई* सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लेकर आता है। यह परिवर्तन सामाजिक संस्थाओं और उसके नियमों, आदर्शों और मूल्यों में हो सकता है। यह बदलाव आकस्मिक या आमूलचूल दोनों तरह से हो सकता है। (यहां पर डाहरेंडॉर्फ मार्क्स के इस विचार से अलग हट कर बात करते हैं कि सामाजिक ढांचे में बदलाव हमेशा क्रांतिकारी यानी आकस्मिक, आमूलचूल और हिंसक होते हैं।)

द्वंद्व समूह रचना का मॉडल प्रस्तुत करते हुए डाहरेंडॉर्फ कहते हैं कि प्रत्येक आदेशक समन्वित साहचर्य में हम दो कल्प समूहों को अलग-अलग पहचान सकते हैं जो साझे अव्यक्त हितों के द्वारा एकता में बंध गए

हों। हितों के प्रति उनका रुझान प्रभुसत्ता पर उनके स्वामित्व या उससे उनके बहिष्कार से तय होता है। इन्हीं कल्प समूहों से हित समूहों को लिया जाता है, जिसके सुस्पष्ट कार्यक्रम प्रभुसत्ता के मौजूदा ढांचे की वैधता को परिभाषित करते हैं या उस पर आक्रमण करते हैं। डाहरेंडॉर्फ कहते हैं कि किसी भी स्थिति में इस प्रकार के दोनों समूह द्वंद्व या संघर्षरत रहते हैं।

7.5.4 सामाजिक ढांचे के लिए द्वंद्व के परिणाम

जब एक *आदेशक समन्वित साहचर्य* में दो परस्पर विरोधी समूहों के रूप में जब द्वंद्व समूहों के वर्गीय प्रारूप बन जाते हैं तो द्वंद्व की परस्पर क्रिया किस तरह से आगे बढ़ती है? जिस सामाजिक ढांचे में समूह द्वंद्व चल रहा हो उसके लिए इसके क्या परिणाम निकलेंगे? द्वंद्व के किसी भी सिद्धांत को ऐसे प्रश्नों का समाधान करना होता है और डाहरेंडॉर्फ ने भी यही प्रयत्न किया है।

द्वंद्व की तीव्रता को लेकर (जिसमें पराजय होने पर 'कीमत' चुकानी पड़ती है) हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि कौन से कारक इस पर सकारात्मक और कौन से नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। डाहरेंडॉर्फ की धारणा है कि वर्ग संघर्ष की तीव्रता इस हद तक घट जाती है जिस हद तक वर्गीय संगठन की स्थितियां मौजूद हैं, उसके अनुसार वह घटती बढ़ती है। उदाहरण के लिए अगर मजदूरों को अपना संगठन बनाने और प्रबंधन (मैनेजमेंट) के साथ सुलह-समझौते करने के अवसर मिलते हैं तो मजदूरों और प्रबंधन के बीच होने वाले द्वंद्व या संघर्ष कम तीव्र होंगे। ठीक इसी प्रकार जिन देशों में लोगों को राजनीतिक दल और नागरिक संगठन बनाने की पूरी स्वतंत्रता है वहां संघर्षों की तीव्रता बहुत कम होगी। इसी तरह भिन्न साहचर्यों में जहां वर्गों को अध्यारोपित नहीं किया जाता, सामूहिक द्वंद्व या संघर्ष की तीव्रता वहां भी कुंद हो जाती है। उदाहरण के लिए, किसी कारखाने के सभी मजदूर एक जातीय अल्संख्यक समुदाय या निम्न जाति के ही नहीं होते और अगर उसमें दोनों का अध्यारोपण हो जाए यानी वर्ग पर जातीयता या जाति हावी हो जाए तो वहां होने वाला संघर्ष अधिक तीव्र होगा।

वर्ग संघर्ष की तीव्रता इस बात से भी प्रभावित होती है कि एक ही समाज में होने वाले विभिन्न सामूहिक द्वंद्व साहचर्यहीन हैं या नहीं। उदाहरण के लिए हम यह मान लेते हैं कि समाज में मुख्य रूप से तीन प्रकार के संघर्ष होते हैं: वर्ग संघर्ष, जातीय संघर्ष और क्षेत्रीय संघर्ष। जैसे उत्तर-दक्षिण को बीच संघर्ष। प्रभुत्व के स्थान पर आसीन लोग अगर उत्तर के प्रभावी जातीय समूह से संबंध रखते हैं और पराधीनता के स्थान में रहने वाले लोग किसी विशेष छोटे जातीय समूह के हैं और दक्षिण से संबंध रखते हैं तो दोनों के बीच होने वाले द्वंद्व की तीव्रता निश्चय ही ज्यादा होगी।

बॉक्स 7.02

गौर करने की बात है कि अगर पारितोषिकों और प्रभुसत्ता का वितरण असंबद्ध (साहचर्यहीन) हो तो भी वर्ग संघर्ष की तीव्रता खत्म हो जाएगी। हालांकि प्रभुसत्ता का प्रयोग और संपत्ति दोनों साथ-साथ चलते हैं, लेकिन ऐसा होना जरूरी नहीं है। यह जरूरी नहीं कि जिन लोगों के पास प्रभुसत्ता हो वे उत्पादन के साधनों के स्वामी भी हों। इसी प्रकार जो मजदूर जिस कंपनी में काम कर रहे हों, हो सकता है कि उस कंपनी के शेयर उनके पास हों । इस प्रकार वे उत्पादन के साधनों के स्वामी भी हो सकते हैं। सामाजिक गतिशीलता भी वर्ग संघर्ष की तीव्रता को प्रभावित करती है। वर्ग जिस हद तक खुले होंगे और संवृत नहीं होंगे यह उसी के अनुसार घटती है। इस प्रकार जाति व्यवस्था वाले समाज में, जहां ऊर्ध्वगामी गतिशीलता के अवसर हमेशा के लिए बंद रहते हैं, संघर्ष या द्वंद्व की तीव्रता विवत (खुले) वर्गीय समाज से अधिक होने की संभावना रहेगी। बिहार में होने वाले जाति संघर्ष इसका उत्तम उदाहरण हैं।

वर्ग संघर्ष की तीव्रता को प्रभावित करने वाले कारकों का विवेचन कर लेने के बाद डाहरेंडॉर्फ संघर्ष की हिंसा को प्रभावित करने वाले परिवर्तियों का विश्लेषण करते हैं। हमने पीछे देखा है कि वे मार्क्स की इस मान्यता को खारिज करते हैं कि सभी वर्ग संघर्ष हिंसक होते हैं। मगर इसका यह मतलब नहीं कि उसमें हिंसा कदापि नहीं होती। उनका मानना है कि हिंसा कदापि नहीं होगी। उनका मानना है कि हिंसा की सीमा शांतिपूर्ण से लेकर खूनी क्रांतिकारी संघर्ष तक अलग-अलग रूपों में होती है।

एक *आदेशक समन्वित साहचर्य* में विद्यमान वर्गीय संगठन की स्थितियों का वर्ग संघर्ष की हिंसा से नकारात्मक संबंध होता है (उदाहरण के लिए, एक कारखाने में मजदूर संघ का बनना और उसके जरिए मजदूरों का उसके प्रबंधन से शांतिपूर्ण ढंग से सामूहिक सौदेबाजी करना)। डाहरेंडॉर्फ यह भी कहते हैं कि अगर पराधीन वर्ग में विद्यमान पूर्ण वंचना या शोषण की जगह सापेक्षिक वंचना ले लेती है तो इससे वर्ग संघर्ष हिंसा कम हो जाती है। वर्ग संघर्ष की हिंसा की सीमा, उसकी तीव्रता को एक और कारक प्रभावित करता है। यह है–संघर्ष या द्वंद्व का नियमन। द्वंद्व के नियमन का तात्पर्य उन युक्तियों और प्रक्रियाओं से है जो संघर्ष की *अभिव्यक्ति* से निबटती हैं न कि उनके समाधान या दमन से। इसका यह अर्थ है कि इसके लिए यह जरूरी है कि दोनों पक्ष यह मान कर चलें कि द्वंद्व यथार्थ और अनिवार्य है। दूसरे वादी के दावे को 'अवास्तविक' कह कर खारिज कर देना द्वंद्व का नियमन नहीं है। यह समझ लिया जाना चाहिए कि उक्त पक्ष का अपना एक मामला है। द्वंद्व नियम की संभावना उस स्थिति में अधिक होती है, जब विरोधी गुट हित समूहों के रूप में संगठित हों। असंगठित समूहों स्थिति में यह नियमन कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए अगर किसी कारखाने में मजदूरों का सिर्फ एक ही संगठन है तो प्रबंधन और मजदूर दोनों संघर्ष के मूल में निहित मुद्दों के निपटारे के लिए कारगर उपाय निकाल सकते हैं।

अंततः दोनों पक्ष कुछ निश्चित औपचारिक 'खेल नियमों' पर सहमत हो जाते हैं तो द्वंद्व अच्छे ढंग से नियमित हो सकता है। दुनिया के अन्य लोकतांत्रिक देशों की तरह भारत ने भी औद्योगिक द्वंद्व नियमन के लिए पूरी व्यवस्था स्थापित की है जिसमें सौदेबाजी, मध्यस्थता, पंचाट, अदालती निर्णय शामिल हैं। द्वंद्व को सुलझाने का आखिरी हथियार हड़ताल है।

वर्ग संघर्ष साहचर्य में होता है। इसकी बदलती तीव्रता और हिंसा के कारण यह सामाजिक ढांचे के लिए परिणाम लेकर आता है। डाहरेंडॉर्फ के अनुसार इससे सामाजिक ढांचे में दो प्रकार के परिवर्तन आते हैं: आकस्मिक और आमूलचूल। ढांचागत परिवर्तन ऐसे परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है जो आदेशक समन्वित साहचर्य में प्रभुत्व और पराधीनता के पद-स्थानों पर लोगों के बदल जाने से आते हैं। इसका उदाहरण यह है कि प्रभुसत्ता के सभी पदस्थानों पर पहले पराधीन वर्ग के सदस्य रहे लोग अधिकार कर लें जैसा कि किसी क्रांति में होता है। मगर ऐसा अक्सर आंशिक रूप से ही हो पाता है।

सामाजिक ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन का अभिप्राय इस तरह के परिवर्तन के परिणामों की सार्थकता और उनके फलितार्थों से है। ध्यान देने की बात यहां यह है कि कई आकस्मिक बदलाव अनिवार्यतः आमूल नहीं होते। उदाहरण के लिए एक जनरल दूसरे जनरल के खिलाफ हिंसक विद्रोह करके उसका तख्ता पलट दे तो इससे कार्मिक में भारी परिवर्तन आएगा लेकिन यह राज्य में विद्यमान संस्थागत या आदर्श व्यवस्था में कोई भारी बदलाव नहीं लाएगा।

7.6 सारांश

मार्क्स के महान सिद्धांत की विशेषता उसकी विश्वव्यापी दर्शन और क्रांतिकारी ऊर्जा थी जिसने सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार की प्रबल भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया। इसने मानव इतिहास की धारा ही बदल डाली। मगर कुछ वर्षों से उनकी कृतियों का निष्पक्ष अध्ययन किया जा रहा है।

असमतावादी, अमानवीय पूंजीवादी व्यवस्था को एक क्रांतिकारी, सुसंगठित श्रमिक वर्ग द्वारा उखाड़ फेंककर सामाजिक परिवर्तन लाने का जो दर्शन मार्क्स ने दुनिया को दिया था वह ज्यादा कामयाब नहीं रहा है। मगर उन्होंने वर्ग और वर्ग संघर्ष की जो धारणाएं अपने दर्शन में प्रयोग की समाज शास्त्र पर उन्होंने बड़ा गहरा प्रभाव डाला। अनेक विद्वानों ने इन्हें पूर्ण रूप से अपना लिया तो कुछ ने इनमें कुछ परिवर्तन-संशोधन किया।

कोजर और डाहरेंडॉर्फ इसी श्रेणी के विद्वान हैं, जिन्होंने वर्ग की महत्ता को स्वीकार तो किया लेकिन इसके स्वरूप को लेकर उनका मत मार्क्स से भिन्न था। पूरा समाज सिर्फ दो विरोधी और विद्वेषी वर्गों में बंटा नहीं हो सकता। समाज में 'समूह' होते हैं जिनके हित अन्य समूहों के हितों से टकराते हैं। यह द्वंद्व सिर्फ समाज में प्राप्त स्थान या पद को लेकर ही नहीं चलता। बल्कि यदि परस्पर क्रियात्मक और परस्पर

प्रभावी होता है। यह द्वंद्व सिर्फ सामाजिक संरचना से ही संबंधित नहीं है बल्कि यह प्रक्रियात्मक भी होता है। इसका एक मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है जो हमें हितों, चेतना और भावनात्मक कीमत के रूप में दिखाई देता है। अंततः इसके सामाजिक संरचना संबंधी परिणाम होते हैं, जो सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकते हैं। इनसे सामाजिक ढांचे में स्थिरता आ सकती है या ये उसे तरह-तरह से बदल सकते हैं। यह कई परिवर्तियों पर निर्भर करता है, जो क्रिया में अनुभवमूलक हो सकते हैं।

7.7 शब्दावली

पूंजीवाद : इस व्यवस्था में समाज उत्पादन साधनों के स्वामियों और श्रमिकों में बंटा रहता है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पादन साधनों के स्वामी मजदूरों का शोषण करते हैं।

द्वंद्व : दो या अधिक विरोधी गुटों का परस्पर विरोधी दृष्टिकोण और कार्य।

समतावादी: यह सिद्धांत कहता है कि हर व्यक्ति, हर समूह को समाज में समान दर्जा और समान अवसर मिलना चाहिए।

क्षरण : यह एक वर्ग या गुट का छोटे समूहों में विघटन है।

प्रकार्य : समष्टि के समेकन या एकीकरण में उसके किसी भी घटक के द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका। जैसे: समाज के एकीकरण में अर्थव्यवस्था जो भूमिका निभाती है।

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कोजर, एल., 1956, *फंक्शन ऑफ सोशल कनफ्लिक्ट*, लंदन, रुटलेज ऐंड केगन पॉल

डारहेंडॉर्फ, राल्फ, 1959, *क्लास ऐंड क्लास कनफ्लिक्ट इन इंडस्ट्रियल सोसायटी*, लंदन, रुटलेज ऐंड केगन पॉल

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) द्वंद्व के प्रकार्य अनेक हैं। पहला, अन्य समूहों के साथ होने वाला द्वंद्व एक समूह को एकीकरण और एकात्मता की ओर ले जाता है। दूसरा, यह समूहों के बीच एक-दूसरे के प्रति विद्यमान वैमनष्य या विद्वेषों में संतुलन बनाकर संपूर्ण व्यवस्था को बरकरार रखता है। मगर कभी-कभी ऐसा होता है कि एक बाहरी समूह द्वेषपूर्ण प्रतिक्रिया देने के बजाए असल में सकारात्मक संदर्भ समूह बन जाता है। इसे हम प्रत्याशोत्मक समाजीकरण कहते हैं जो संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के जरिए वर्ण व्यवस्था में भी प्रवेश कर गया है।

बोध प्रश्न 2

1) मार्क्स का सिद्धांत पूंजीवादी व्यवस्था में वर्गों के ध्रुवीकरण के जरिए क्रांतिकारी परिवर्तन की कल्पना करता है। मगर डाहरेंडॉर्फ का कहना है कि श्रम और पूंजी के क्षरण और सामाजिक गतिशीलता के कारण इस तरह की क्रांति और वर्गों का ध्रुवीकरण कभी नहीं होगा। औद्योगिक समाज नाना प्रकार की प्रक्रियाओं के जरिए वर्गों के बीच होने वाले तनावों को दूर कर देता है।

2) i) गलत
   ii) गलत
   iii) गलत
   iv) सही